अध्याय 1

भूमिका

# पाणिनि तथा संस्कृत की व्याकरण-परम्परा

## 1.1. संस्कृत-व्याकरण के प्रवर्तकों में पाणिनि का स्थान

जर्मन विद्वान् गोल्डस्टूकर उस क्षण निःसन्देह एक बहुत बड़े यथार्थ का अनुभव कर रहा था जब उसकी लेखनी ऋषि पाणिनि तथा उसकी अद्वितीय व्याकरण-कृति के विषय में ये उद्‌गार अंकित कर रही थी—"पाणिनि का व्याकरण पुरातन साहित्य की विस्तृत तथा महत्त्वपूर्ण शाखा का केन्द्र है। भारत के वैज्ञानिक विकास की भूमि में उसकी कृति से अन्य किसी की जड़ें इतनी गहरी नहीं पहुंची हैं। यह कृति भाषा-साधुता का प्रमाण है,—वैदिक भाष्यों की आधारशिला है। कोई भी भाषावैज्ञानिक, जब भाषा-विज्ञान-सम्बन्धी कठिनाई अनुभव करता है, इसकी ओर देखता है। उन प्रकाशात्मक ऋषियों के अतिरिक्त, जिनके कार्य 'हिन्दू-विश्वास' के मूल हैं, उन व्यक्तित्वों में, जोकि वैज्ञानिक कृतियों के उपज्ञाता हैं तथा वास्तविक अर्थ में 'व्यक्तित्व' माने जा सकते हैं, पाणिनि ही एकमात्र है जो अन्वर्थतः 'ऋषि' है—वह उपज्ञाता जिसकी कृति का मूल देव-शक्ति के वरदान में समझा जाता है।" 'पाणिनि'—यह त्र्यक्षर नाम भारत की उस भाषावैज्ञानिक प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे शब्द-विद्या की जन्मदात्री होने का श्रेय भले ही न दिया जा सके तथापि जिसके सर्वातिशायी व्याकरणशास्त्र ने अपने उदय से पूर्व की सभी वैयाकरण-कृतियों को शास्त्र-सन्दर्भों में नाम-शेष कर दिया तथा पश्चाद्भावी कृतियों को उनकी साम्प्रदायिक परिसीमाओं में रहने को विवश कर दिया।

## 1.2. पाणिनि का स्थिति-काल

अष्टाध्यायी व्याकरणशास्त्र के रूप में 'मानव-मेधा की एक महत्तम कृति'[1] के जन्मदाता तथा 'भारत के सर्वोत्कृष्ट आप्त वैयाकरणों में अन्यतम'[2] पाणिनि के स्थिति-काल का अध्ययन करते हुए हम यह नहीं भुला सकते कि मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई से प्रकाश में आने वाली सिन्धु-सभ्यता के परिचय के अतिरिक्त संभवत: कोई ऐसी ऐतिहासिक उपलब्धि नहीं हुई है जिसके आधार पर 19वीं शती के यूरोपियन प्राच्य-विशेषज्ञों की भारत के पुरातन से सम्बन्ध रखने वाली कालिक मान्यताओं में बहुत बड़ा परिवर्तन किया जा सके। सिन्धु-सभ्यता के उदय से भारत के पुरातन इतिहास में एक आदिम अध्याय ही और जुड़ा है। उससे आर्य-वैदिक सभ्यता के कालिक विकास के विवरण पर सिवा इसके कि भारत की प्राचीनतम सभ्यता का स्थान ऋग्वैदिक सभ्यता के स्थान पर 'सिन्धु-सभ्यता' को मिला है, निष्कर्षों में परिवर्तन लाने वाला कोई अन्य प्रभाव नहीं हुआ। अत: स्वाभाविक है कि अपने पुरातन की किसी भी घटना या किसी भी व्यक्ति की कालिक स्थिति के सम्बन्ध में हम भारतीयों का अध्ययन उन्नीसवीं शती के अपने उन्हीं पाश्चात्य मित्रों की मान्यताओं से आरम्भ होता है, जिनके प्रति इस दिशा में हम वस्तुत: ऋणी हैं। उन्होंने हमारे इतिहास को अन्धकार से न केवल उभारा, अपितु भारतीय अध्येता की इतिहास के प्रति लज्जास्पद उदासीनता को दूर किया और साथ ही इतिहास को संजोने की दिशायें भी दीं। इस सब का ही यह परिणाम हुआ कि भावी भारतीय अध्येताओं ने अपने पुरातन को सतर्क दृष्टि से झांका है और स्वतन्त्र अध्ययनों के द्वारा जहां कहीं अतथ्यात्मक लगा पाश्चात्य मान्यताओं में संशोधन की सम्भावनाएं भी प्रस्तुत की हैं।

पाणिनि के स्थित-काल का सही निर्धारण कर पाना भारत के प्राचीन इतिहास की खोज करने वाले पुराविदों के लिए बड़ी चुनौती रहा है। इस महत्त्वपूर्ण विषय[3] पर पाश्चात्य तथा भारतीय मनीषियों के न्यूनाधिक अन्तर से अनेक

---

1. Bloomfield, 'Language', p. 11.
2. T. Gold Stucker, Panini, p. 289.
3. Gold Stucker, Panini, p. 95 : "The Sanskrit philology should not yet possess the means of ascertaining the date of Panini's life, is no doubt a serious impediment to any research concerning the chronology of ancient Hindu works. For Panini's Grammar is the centre of a vast and important branch of the ancient literature. No work has struck deeper roots than his in the soil of the scientific development of India."

निष्कर्ष प्राप्त किये हैं। उनके निष्कर्षों का तुलनात्मक अध्ययन निश्चित ही हमारे लिए विषय की यथार्थता के निकट पहुंचने में सहायक सिद्ध होगा।

### 1.3. बार्टलिक तथा मैक्समूलर का निष्कर्ष

इन दोनों महानुभावों ने सोमदेव के 'कथासरित्सागर' (11वीं शती) तथा कल्हण पंडित की 'राजतरंगिणी' (12वीं शती) के प्रमाण से कात्यायन तथा पाणिनि दोनों का समय 350 ई० पू० निर्णीत किया है। कथासरित्सागर की एक कहानी में पाणिनि के नन्द सम्राट् की सभा में पाटलिपुत्र जाने का वर्णन है। राजतरंगिणी में कश्मीरी शासक 'अभिमन्यु' (100 ई० पू०) के निर्देश से कश्मीर में चन्द्रवैयाकरण के द्वारा पतञ्जलि के महाभाष्य की शिक्षा के प्रचार का उल्लेख हुआ है। बार्टलिक ने आनुमानिक रीति से महाभाष्य की रचना का काल अभिमन्यु से 50 वर्ष पूर्व माना है। साथ ही सूत्रकार तथा महाभाष्यकार के मध्य उसने वार्तिककार, परिभाषाकार और कारिकाकार तीन वैयाकरणों की पीढ़ियों का व्यवधान मानते हुए प्रत्येक पीढ़ी के मध्य 50 वर्ष का अन्तर स्वीकारा है। बार्टलिक ने इस रीति से पाणिनि को 350 ई० पू० माना है।[1] प्रो० मूलर ने बार्टलिक के निष्कर्ष को पर्याप्त सही मानते हुए केवल एक अंश में विरोध रखा है। वह पाणिनि और कात्यायन को समसामयिक मानते हैं।[2]

### 1.4. प्रो० वेबर का निष्कर्ष

प्रो० वेबर ने बार्टलिक की स्थापना को अष्टाध्यायी के अन्तःसाक्ष्य के विपरीत माना है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी 4.1.49 में 'यवन' शब्द का प्रयोग किया है तथा अष्टाध्यायी 3.2.21 में 'लिपि' का प्रयोग किया है। वार्तिककार ने 'यवनानी' का 'लिपि' अर्थ में प्रयोग पाणिनि-सम्मत माना है।[3] साथ ही अष्टाध्यायी 4.2.45 सूत्र के अन्तर्गत पठित गणपाठ में 'क्षुद्रक-मालव' सेना का नाम आया है। प्रो० वेबर ने दोनों ही साक्ष्यों के आधार पर पाणिनि का समय सिकन्दर के आक्रमण (327 ई० पू०) के पश्चात् मानने की पेशकश की है।[4] उसकी मान्यता है कि भारतीय वैयाकरण को 'यवन' तथा 'यवनानी' लिपि का परिचय उक्त आक्रमण के पश्चात् ही सम्भव है। क्षोद्रकमालवी सेना को भी वेबर ने सिकन्दर के प्रतिरोध हेतु संगठित क्षुद्रक तथा मालव गण की संयुक्त सेना के रूप

---

1. गोल्ड स्टूकर, पाणिनि, पृ० 93
2. वही, पृ० 91, 93
3. महा० 4 अ० 1 पा० 2 आ० वा० 5183, 'यवनाल्लिप्याम्'
4. ए० वेबर, 'हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर', पृ० 217-221

में लिया है।

## 1.5. गोल्डस्टूकर का निष्कर्ष

गोल्डस्टूकर का 'पाणिनि' हमारे महान् वैयाकरण के स्थिति-काल के अध्ययन की दिशा में एक अद्‌भुत कृति है। लेखक ने बाह्य सामग्री का थोथा सहारा न लेकर अष्टाध्यायी के अन्तःसाक्ष्यों को पुरातन वाङ्मय की विविध कृतियों की तुलना में आमने-सामने तौला है। गोल्डस्टूकर की असाधारण तर्कशक्ति, वाग्मिता तथा उसके द्वारा प्रस्तुत उपलब्ध प्रमाणों का सुनियोजित संकलन पाणिनि के अध्येता को सचमुच भारत के अदृश्य पुरातन में गहरे और गहरे बैठने का आह्वान करना है। उसने भारतीय काल-गणना में अपने समसामयिक विद्वानों विशेषतः मैक्समूलर,[1] बार्टलिक[2] तथा वेबर[3] के निष्कर्षों को पूरी तरह निरस्त कर दिया है। उसके द्वारा प्रस्तुत दिशा से पाणिनि का समय कात्यायन के समय से चार-पाँच पीढ़ी पूर्व होना चाहिए। यह मोटे तौर पर 700 ई० पूर्व[4] होता है।

तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर गोल्डस्टूकर ने ये निष्कर्ष प्राप्त किये हैं:

(क) वैदिक संहिताओं में पाणिनि ऋक्, यजुष्, साम की सूचना देता है। अथर्ववेद का कोई उल्लेख नहीं करता।[5]

(ख) पाणिनि के समय तक याज्ञवल्क्य की शुक्ल-यजुर्वेद संहिता (वाजसनेयि-संहिता) का निर्माण नहीं हुआ था।[6]

(ग) पाणिनि अपने दो सूत्रों में 'ब्राह्मण' और 'कल्प' का उल्लेख करता है[7] किन्तु ये ब्राह्मण और कल्प 'पुराण-प्रोक्त' हैं न कि 'शतपथ' आदि समसामयिक या पश्चाद्‌भावी। आरण्यक और उपनिषद् तो सुतराम् पश्चाद्‌भावी लगते हैं।[8]

---

1. टी० गोल्डस्टूकर, 'पाणिनि', पृ० 87-92
2. वही, पृ० 92-93
3. वही, पृ० 205-208
4. वही, पृ० 230
5. वही, पृ० 156

   'There is no evidence to show that he (Panini) knew an Atharva-veda'.
6. वही, पृ० 154
7. पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु (अष्टा० 4. 3. 105)
8. टी० गोल्डस्टूकर, 'पाणिनि', पृ० 154

(घ) उपलब्ध प्रातिशाख्य (विशेष रूप से ऋक् प्रातिशाख्य तथा वाजसनेयि प्रातिशाख्य) पाणिनि से उत्तरकाल की रचनाएं हैं।[1]

(ङ) यास्क पाणिनि का पूर्ववर्ती है।[2]

(च) पाणिनि गौतम बुद्ध से पूर्वकालिक हैं।[3]

उपर्युक्त निष्कर्ष प्राप्त करने में गोल्डस्टूकर ने जिस असाधारण विद्वत्ता और तर्कशक्ति का उपयोग किया है वह पाणिनि का स्थिति-काल निश्चित करने में अन्तिम सफलता नहीं देती और न ही लेखक ने ऐसा दावा ही किया है। वह सत्य को खोजने की एक दिशा का सतर्क संकेत है।

## 1.6. युधिष्ठिर मीमांसक का निष्कर्ष

मीमांसक ने यत्र-तत्र शास्त्र-सन्दर्भ में उद्धृत नामों के सहारे यास्क, शौनक व्याडि, पाणिनि, पिंगल और कोत्स आदि को लगभग समकालिक माना है। महाभारत को प्रमाण मानकर शौनक तथा यास्क का समय कम से कम 2800 ई० पूर्व माना है।[4] उनकी रीति से यही पाणिनि का स्थिति काल होना चहिए।

## 1.7. भण्डारकर-परिवार के निष्कर्ष

श्री रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने भी गोल्डस्टूकर की भांति पाणिनि का समय सप्तमी शती ई० पू० ही माना है। श्री देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर का प्रतिसंस्कृत मत पाणिनि को छठी शताब्दी ई० पू० के मध्य रखना है। भण्डारकर आरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के आचार्य आर० एन० दाण्डेकर ने भी पाणिनि की स्थिति को स्पष्टतः छठी शती ई० पू० माना है। पाणिनि द्वारा प्रयुक्त 'यवन' शब्द को उन्होंने 'आयोनिया' निवासी के लिए बताया है जिनका परिचय भारतीयों को ईरान के द्वारा था।[5]

---

1. टी० गोल्डस्टूकर, 'पाणिनि', पृ० 215-226
2. वहीं, पृ० 245
3. वही, पृ० 247
4. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ० 137
5. R. N. Dandekar, "Some Aspects of the Indo-Mediterranean Contacts" Annals of the Bhandarkar Research Institute, Vol. 'L', 1969, p. 68 : "In the sixth Century B. C. Persia served as a link between the Greeks and the Indians. Panini (6th-5th century B.C.) shows acquaintance with the Yavanas or the Ionion Greeks."

## 1.8. मनोमोहन घोष तथा श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती के निष्कर्ष

कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो० मनोमोहन घोष ने पाणिनीय शिक्षा के उपलब्ध पांच संस्करणों का तुलनात्मक अध्ययन करके 'पाणिनीय अष्टाध्यायी' के प्रमाणों से समन्वय कर उसका अष्टादश श्लोकात्मक संस्करण निर्मित किया है। इसकी प्रस्तावना में प्रो० घोष ने सतर्क इतिहास-दृष्टि से शिक्षा तथा प्रातिशाख्य शास्त्रों के उदयकाल का निर्धारण करने का प्रयास किया है। साथ ही, पाणिनि के स्थिति काल पर विभिन्न मतों की समीक्षा करते हुए उसे ब्राह्मण-काल की सन्ध्या माना है।[1] उनके मत से यह समय 500 ई० पू० से बाद का नहीं हो सकता।

## 1.9. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के निष्कर्ष

डा० अग्रवाल का 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' निस्सन्देह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। डा० अग्रवाल के इस कार्य ने अष्टाध्यायी को तत्कालीन भारत के इतिहास ज्ञान का एक मूल्यवान साधन सिद्ध कर दिया है। पाणिनि के स्थिति-काल के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का तुलनात्मक अध्ययन करके डा० अग्रवाल ने पाणिनि को पांचवीं शती ई० पू० में माना है।[2] अपनी मान्यता के समर्थन में डा० अग्रवाल ने जो साक्ष्य उपस्थित किये हैं, उनमें अधिक स्पष्ट निर्णय देने वाले ये हैं:

(क) **साहित्यिक उल्लेखों का साक्ष्य**—डा० अग्रवाल गोल्टस्टूकर की इस मान्यता से सहमत नहीं कि पाणिनीय-अष्टाध्यायी में केवल ऋक्, साम तथा कृष्ण यजुर्वेद का ही उल्लेख है। उनका दावा है कि पाणिनि के समय तक न केवल उत्तरकालीन वैदिक साहित्य,—अथर्ववेद, ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् ही प्रकाश में आ चुके थे अपितु अनेकविध लौकिक साहित्य भी विकास पा चुका था। पाणिनि स्वयं अपने सूत्रों में ब्राह्मण,[3] कल्प, उपनिषद्[4] रचनाओं का संकेत देता है। उसके युग में नट-सूत्रों[5] (नाट्य विद्या) का निर्माण हो चुका था। शिशुक्रन्दीय, यमसभीय, इन्द्रजननीय[6] जैसे लौकिक ग्रन्थ अस्तित्व में आ चुके थे। महाभारत के पात्रों का तो पाणिनि नामतः उल्लेख करता है।[7]

---

1. मनोमोहन घोष, 'पाणिनीय शिक्षा', प्रस्तावना, पृ० 111
2. वासुदेवशरण अग्रवाल, 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष', पृ० 468
3. पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु (अष्टा० 4.3.105)
4 जीविकोपनिषदावौपम्ये (अष्टा० 1.4.79)
5. पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः (अष्टा० 4.3.110)
6 शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः (अष्टा० 4.3.88)
7. वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् (अष्टा० 4.3.98)

(ख) **अनुश्रुति का साक्ष्य**—सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' में तथा क्षेमेन्द्र ने 'वृहत्कथामंजरी' में पाणिनि का पाटलिपुत्र में नन्दराज की सभा में जाने का वर्णन किया है। इस तथ्य का समर्थन, 'बौद्धधर्म का इतिहास' लिखने वाले डा० तारानाथ ने भी किया है। डा० तारानाथ ने नन्दवंशीय सम्राट महानन्दिन को पाणिनि का मित्र माना है जिसका काल 5वीं शती ई० पू० का मध्यकाल था।

(ग) **यवनानी शब्द का साक्ष्य**—डा० अग्रवाल ने पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी 4.1.49 तथा अष्टा० 3.2.21 में उल्लिखित 'यवन' शब्द के साक्ष्य पर आधारित डा० वेबर के इस निष्कर्ष को कि भारतीय लोगों को 'यवन' शब्द का परिचय सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय हुआ होगा, ऐतिहासिक सत्य के विरुद्ध बताया है। उनके मत से इस शब्द का प्रयोग 'आयोनियन' लोगों के लिए था। जिसका परिचय भारतीय लोगों को सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व ही था। पाणिनि का अभिजन गान्धार ईरानी सम्राट दारा (521-486 ई० पू०) के साम्राज्य का अंग था। दारा के अभिलेखों में आयोनियन लोगों के लिए 'यौन' शब्द का प्रयोग हुआ है। पाणिनि का 'यवन' यौन का ही रूपान्तर है जो मेसिडोनिया के यूनानी का नहीं, आयोनिया के यूनानी का संकेत करता है।

(घ) **क्षुद्रकमालवी सेना का साक्ष्य**—वेबर ने अष्टा० 4.2.45 के गणसूत्र में पठित 'क्षुद्रकमालवात् सेनासंज्ञायाम्' का प्रयोग देखकर निष्कर्ष दिया है कि यह संयुक्त सेना सिकन्दर महान् के आक्रमण के प्रतिरोध के लिए बनी थी। डा० अग्रवाल ने 'क्षौद्रकमालवी' संयुक्त सेना को ईरानी सम्राट रुषयार्श के सहयोग में यूनानियों के विरुद्ध लड़ने वाली भारतीय सेना माना है।

(ङ) **श्यूआन् चुआंग की 'सीयुकि' (शलातुर) का साक्ष्य**—श्यूआन् चुआंग ने 'सीयुकि' के वर्णन में पाणिनि को गन्धार देश का निवासी बताया है तथा तत्कालीन सम्राट द्वारा पाणिनि के शास्त्र के सम्मान की बात कही है। इन सभी तथ्यों की एकवाक्यता पाणिनि को महानन्दिन् (445 से 403 ई० पू०) के समय में रखने से हो जाती है।

(च) **राजनीतिक सामग्री का साक्ष्य**—पाणिनि ने मगध, कोसल, अवन्ति, कलिंग, सूरमस, अश्मक, कुरु, पंचाल आदि जनपदों का उल्लेख किया है जो 'एकराज' थे। यह जनपद युग महानन्दिन् का युग (450 से 400 ई० पू०) था। आगे जाकर उसके पुत्र महापद्म ने अनेक जनपदों का उच्छेद करके मगध साम्राज्य की स्थापना की। पाणिनि महानन्दिन् के मित्र थे।[1]

(छ) **नक्षत्र-विज्ञान का साक्ष्य**—पाणिनि ने अष्टा० 4.3.34 में दस नक्षत्रों की सूची दी है। इसमें सर्वप्रथम 'श्रविष्ठा' नक्षत्र का उल्लेख किया है। लगता है,

1. वासुदेवशरण अग्रवाल, 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' पृ० 474-75

पाणिनि के समय नक्षत्र-गणना 'श्रविष्ठा' (धनिष्ठा) से आरम्भ होती थी। आगे जाकर इसका स्थान 'श्रवण' नक्षत्र ने ले लिया। ज्योतिर्विद आचार्यों के अध्ययन से यह काल 500 ई० पू० से 400 ई० पू० के मध्य होना चाहिए।[1]

डा० अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत व्यापक अध्ययन एवं प्रमाणों से पाणिनि का स्थितिकाल 480 ई० पू० से 410 ई० पू० का अन्तराल सिद्ध होता है।

## 1.10. पाणिनि की रचनाएं

पाणिनीय रचनाओं के नाम से इन रचनाओं को प्रतिष्ठा मिल चुकी है—(1) अष्टाध्यायी (2) धातुपाठ (3) गणपाठ (4) पाणिनीय शिक्षा। अन्तिम तीन रचनाएं अष्टाध्यायी के परिशिष्ट कहे जा सकते हैं। इनका उपलब्ध रूप पाणिनि-प्रोक्त है अथवा उसमें कुछ मिश्रण भी कर दिया गया है। यह पृथक् अध्ययन का विषय है।[2] अष्टाध्यायी के सन्दर्भ में इन तीनों रचनाओं का मूल्यांकन करने पर इस वास्तविकता को नहीं नकारा जा सकता कि इन पूरक कृतियों के अभाव में तो अष्टाध्यायी जैसे सूत्र-शास्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः न्यासकार का यह एकपक्षीय निर्णय कि गणकार और सूत्रकार दो पृथक् व्यक्ति हैं, मान्य नहीं हो सकता।[3] कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो० मनोमोहन घोष द्वारा सम्पादित 'पाणिनीय शिक्षा' तथा उसके पाणिनिप्रोक्तत्व पर सम्पादक के सतर्क प्रमाणों को पढ़कर तत्सम्बन्धी अपाणिनीयत्व की भ्रान्ति स्वतः दूर हो जाती है।

## 1. 11. अभिजन तथा वंश

पाणिनि का अभिजन गन्धार देश (अफगानिस्तान) का शलातुर ग्राम था। चीनी यात्री श्यूआन् चुआंङ सप्तम शताब्दी के आरम्भ में मध्य एशिया के स्थल मार्ग से भारत आया था। मध्य में वह 'शलातुर' में ठहरा था। उसके दिए गए विवरण के अनुसार उद्भाण्ड (ओहिन्द) से लगभग बीस मील पर शलातुर स्थान था। यही वह ऐतिहासिक स्थान है जहां पाणिनि ने अपने व्याकरण-शास्त्र की रचना की थी।[4] अभिजनमूलक नाम से पाणिनि को शालातुरीय भी कहा जाता है।[5] पुरुषोत्तम देव ने त्रिकाण्ड शेष (कोश) में पाणिनि के छः नाम दिए हैं—

---

1. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० 471-72
2. इस दिशा में डा० कपिलदेव का 'संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि' प्रकाशित हो चुका है।
3. जिनेन्द्र बुद्धि, काशिकाविवरणपंजिका (न्यास), अष्टा० 8.4.3
4. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० 14
5. वर्धमान, गणरत्न महोदधि, पृ० 2

पाणिनि, पाणिन, दाक्षीपुत्र, शालङ्किक, शालातुरीय, तथा आहिक।[1] युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार पाणिनि नाम युवप्रत्ययान्त है, अतः सूत्रकार के वंश का का मूलपुरुष पणिन् तथा पिता 'पाणिन' माना जा सकता है। पाणिनि नाम के के पीछे यदि यह धारणा सही है तो मानना होगा कि इतिहास सूत्रकार के वास्तविक नाम से परिचय नहीं रखता, अपितु गोत्रव्यपदेशज नाम ही प्रसिद्धि पा गया गया है।

पाणिनि की माता का नाम दाक्षी था। उसका मामा दाक्षायण व्याडि कहा जाता है।[2]

## 1.12. पाणिनि से पूर्व वैदिक व्याकरण

अष्टाध्यायी जिस सर्वांगपूर्ण व्याकरण के रूप में उपलब्ध हुई है उसे देखकर यह न मानने का कोई कारण नहीं कि पाणिनि की व्याकरण-कृति अपनी पूर्ववर्ती सुदीर्घ शाब्दिक परम्परा की चरम परिणति है।[3] यह ठीक है कि आज कतिपय प्राप्तिशाख्यों, शिक्षाग्रन्थों तथा यास्कीय निरुक्त के अतिरिक्त, जिनकी पाणिनि से पूर्ववर्तिता उपलब्ध रूप में कितनी ही सन्दिग्ध[4] क्यों न हो, मूलरूप में अवश्य मानी जाएगी। अष्टाध्यायी का अध्येता अपने शास्त्र की स्वतन्त्र विधा तथा सर्वांगपूर्णता के कारण इन रचनाओं को भले ही आज व्याकरण मानने से मना कर दे किन्तु वास्तविकता यह है कि मूलतः शिक्षा, प्रातिशाख्य और निरुक्त जैसी रचनाओं ने व्याकरण शास्त्र की पृष्ठभूमि तैयार की है।[5] वाक्यों का पदों में, पदों का प्रकृति-प्रत्ययों में और उनका भी तदुच्चारणादि वैशिष्ट्य वाली वर्णध्वनियों में विभाजन; तथा उनके पारस्परिक संरचनात्मक सम्बन्धों का विश्लेषण करने वाला भाषाविज्ञान (व्याकरण) एक क्रमिक विकास की अपेक्षा रखता है। इसे क्षणविशेष में किसी व्यक्तिविशेष के मस्तिष्क में स्वतः की साधना अथवा देवप्रसाद के कारण होने वाली आकस्मिक घटना के रूप में लेना अतर्कसगत है। शिक्षा, प्रातिशाख्य, निरुक्त ग्रन्थों का अष्टाध्यायी के सन्दर्भ में अवलोकन करके तथा उनकी प्रवृत्ति-दिशा एवं उपादेयता के बारे में आप्त विद्वानों के निष्कर्षों की समीक्षा करके हम इन निष्कर्षों पर पहुंचते हैं:

(क) उपलब्ध शिक्षा-ग्रन्थ तथा प्रातिशाख्य वैदिक व्याकरण कहे जाने

---

1. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 129
2. वही, पृ० 131
3. ब्लूमफील्ड, लेंग्वेज, पृ० 11
4. गोल्डस्टूकर, पाणिनि, पृ० 213-15
5. डा० सूर्यकान्त, ऋक्तन्त्र-भूमिका, पृ० 49-66

चाहिए।[1] इनके अध्ययन के विना वेद-भाषा-विषयक अनेक ज्ञातव्य तथ्य अज्ञात रह सकते हैं। संहिता का पदपाठ में परिवर्तन; पदपाठ का क्रमपाठ द्वारा संहितीकरण; उदात्तादिस्वरों की सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्थितियां; यथास्थान स्वरवर्णों में ह्रस्व-दीर्घप्लुतभाव; वर्णध्वनियों के उच्चारण-वैशिष्ट्य तथा पौर्वापर्यमूलक लोपागम-विकार आदि का विज्ञान इन ग्रन्थों के अध्ययन के विना अपूर्ण ही नहीं, असम्भव है।

(ख) शिक्षा तथा प्रातिशाख्य ग्रन्थों की ध्वनिविज्ञान सम्बन्धी उपलब्धियों का पाणिनीय व्याकरण में पूर्ण उपयोग हुआ है। पाणिनीय शिक्षा को पाणिनि-प्रोक्त मानने से भी इस तथ्य की पुष्टि ही होती है, विरोध नहीं।

(ग) पाणिनि का व्याकरण जिस पूर्णता को लेकर चला है उसके अनुरूप उसमें ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान तथा वाक्यविज्ञान सभी होना चाहिए।[2] ये परस्पर इतने सापेक्ष हैं कि इनके अध्ययन के स्वतन्त्र क्षेत्र मान लेने पर भी परस्पर उपकार्योपकारकभाव मानना ही होगा। पदविज्ञान और वाक्यविज्ञान तो अष्टाध्यायी का प्रधान विषय ही है। तदर्थ अपेक्षित ध्वनिविज्ञान के लिए शास्त्रकार द्वारा स्वयं कोई शिक्षा-ग्रन्थ रचा जाना अत्यावश्यक है जैसा कि पाणिनीय शिक्षा से सिद्ध होता है। पाणिनि के 'तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्' (अष्टा० 1.1.9) तथा 'स्थानेन्तरतम:' (अष्टा० 1.1.50) आदि का यथार्थ-बोध ध्वनिविज्ञान की अपेक्षा रखता है।

(घ) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, यद्यपि अर्थविज्ञान से सर्वथा दूर रहने की क्षमता रखता है तथा पाणिनि का व्याकरण-शास्त्र, जैसा कि यथास्थान स्पष्ट होगा, बहुत अंश में अर्थनिरपेक्ष कहा जा सकता है, तथापि निरुक्त के विषय में यास्क के इस दावे को कि "इदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्य स्वार्थसाधकं च[3]—सहसा तिरस्कृत नहीं किया जा सकता। निरुक्त के निर्वचन शब्दों की विविध अर्थ-बोधक-वृत्तियों का परिचय देते हैं जिनका वर्णनात्मक व्याकरण-शास्त्र सहज उपयोग कर जाता है। अष्टाध्यायी में चरणेभ्यो धर्मवत् (अष्टा० 4.2.46) इत्यादि द्वारा प्रकृतिविशेष से अर्थविशेष के अधिकार में विहित प्रत्ययों का अन्यार्थबोधन में अतिदिष्ट करना नैरुक्तिक अर्थ-प्रवृत्तियों के परिचय के अतिरिक्त

---

1. सिद्धेश्वर वर्मा, 'क्रिटिकल स्टडीज इन दी फोनेटिक आब्जरवेशन्स आफ इन्डियन ग्रामेरियन्स', पृ० 15
2. Robert A. Hall Jr., Introductory Linguistics, p: 32 : 'Linguistic analysis is concerned primarily with the central three of these structural levels : phonology, morphology and syntax.'
3. यास्क, निरुक्त, नैघण्टुक काण्ड, अ० 1 पा० 5 ख० 15

कुछ भी नहीं है क्योंकि जहां तक शब्द के रूपनिर्माण का प्रश्न है वह तो किसी एक ही स्थल पर समझा जा सकता है। किन्तु यह एक यथार्थ है कि वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का 'निरुक्त' लोक-व्यवहार अधिक होता है, अतः उसे कठोर अर्थों में यास्कीय निरुक्त जैसे शास्त्र का ऋणी नहीं कहा जा सकता।

## 1.13. उपलब्ध शिक्षाएं, प्रातिशाख्य तथा निरुक्त

अधिकांश शिक्षा-ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध शिक्षाओं में पाणिनीय शिक्षा, आपिशलीय शिक्षा, याज्ञवल्क्य-शिक्षा आदि प्रमुख हैं। प्रातिशाख्य ग्रन्थों में ऋक् प्रातिशाख्य, वाजसनेय प्रातिशाख्य, साम-प्रातिशाख्य, तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य, मैत्रायणीय प्रातिशाख्य, अथर्व-प्रातिशाख्य, ऋक्-तन्त्र, साम-तन्त्र, लघु ऋक्-तन्त्र, अथर्व चतुरध्यायी उपलब्ध हैं। निरुक्त ग्रन्थों में केवल यास्क का निरुक्त ही प्राप्त है।

## 1.14. पाणिनि के पूर्ववर्ती वैयाकरण

शाखा, प्रातिशाख्य और निरुक्त व्याकरण से निकटता रखते हुए भी स्वतंत्र वेदांग के रूप में अस्तित्व बनाये रहे हैं। अतः जब हम पाणिनि के पूर्ववर्ती वैयाकरणों की चर्चा करते हैं तो हमारा अभिप्राय उन शाब्दिकों से होता है जिन्होंने भाषा का प्रकृति-प्रत्यय के रूप में विभाग करके विश्लेषण किया। इनमें से कुछ शाब्दिक ऐसे हैं जिनका पाणिनि ने अष्टाध्यायी सूत्रों में साक्षात् उल्लेख किया है। अनेक ऐसे हैं जिन्हें उसने 'आचार्याणाम्' जैसे सामान्य संकेतों से सूचित किया है। यहाँ हम केवल उन्हीं आचार्यों की चर्चा करेंगे जिनका पाणिनि ने स्वयं उल्लेख किया है :

(1) **आपिशलि**—पाणिनि ने 'वासुप्यापिशलेः' अष्टा॰ 6.1.92 में इसका उल्लेख किया है। आपिशलि व्याकरण आज उपलब्ध नहीं है। 'आपिशलि शिक्षा' नाम से एक कृति डा॰ रघुवीर द्वारा सम्पादित की गई है।

(2) **काश्यप**—इसका उल्लेख अष्टा॰ 1.2.5, तथा 8.4.67 में हुआ है। इसका कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं है।

(3) **गार्ग्य**—गार्ग्य का उल्लेख अष्टा॰ 7.3.99, अष्टा॰ 8.3.20, अष्टा॰ 8.4.67 में हुआ है। गार्ग्य का कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि इस नाम के व्यक्ति को व्याकरण, निरुक्त[1] और प्रातिशाख्य[2] तीनों क्षेत्रों में सम्मान मिला है।

---

1. निरुक्त, अ॰ 1 पा॰ 4 ख॰ 1, पृ॰ 76
2. डा॰ सूर्यकान्त, ऋक्-तन्त्रम्, प्रस्तावना, पृ॰ 62

(4) **गालव**—इस आचार्य को पाणिनि ने अष्टा० 6.3.61, अष्टा० 7.1.74, अष्टा० 7.3.99, अष्टा० 8.4.67 में स्मृत किया है। इसका कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं है। किन्तु पुरातन वाङ्मय में इसे 'शिक्षा-प्रणेता' तथा 'क्रम का प्रवक्ता' कहा है।[1]

(5) **चाक्रवर्मण**—पाणिनि ने अष्टा० 6.1.130 में चाक्रवर्मण का उल्लेख किया है। इसका भी कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं है।

(6) **भारद्वाज**—अष्टा० 7.2.63 में इसका उल्लेख हुआ है। वैयाकरण रूप में इसका अस्तित्व भी केवल यत्र-तत्र उद्धरणों तक सीमित है।

(7) **शाकटायन**—इसका उल्लेख अष्टा० 3.4.11, अष्टा० 8.3.18 तथा अष्टा० 8.4.50 में हुआ है। शाब्दिक जगत् में शाकटायन निस्सन्देह सर्वतोमुखी प्रतिभा का व्यक्तित्व लगता है। शाकटायन के नाम से ये रचनाएं जुड़ी हुई हैं:

(क) ऋक्-तन्त्र

(ख) उणादि सूत्र

शाकटायन का व्याकरण सम्प्रति अनुपलब्ध है तथापि उसका 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' सिद्धांत सूचित करता है कि उसके व्याकरण में प्रकृति-प्रत्यय का व्यापक विवेचन रहा होगा।

(8) **शाकल्य**—इसका उल्लेख पाणिनि ने अष्टा० 1.1.16, अष्टा० 6.1.127, अष्टा० 8.3.19, अष्टा० 8.4.51 में किया है। शाकल्य का कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं है और केवल ऋग्वेद के पदपाठ के कर्त्ता के रूप में ही इसका सम्मान किया जाता है।

(9) **सेनक**—अष्टा० 5.4.11 में इसका उल्लेख हुआ है इसका न तो कोई व्याकरण शेष है और न अन्यत्र इसके सिद्धान्तों की चर्चा है।

(10) **स्फोटायन**—अष्टा० 6.1.123 में इसका उल्लेख हुआ है इसका भी कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं है।

उपर्युक्त जिन दस शाब्दिकों की चर्चा की गयी है उनकी रचनाओं के अभाव में हम उनका यथार्थ मूल्यांकन भले ही न कर सकें किन्तु जब पाणिनि जैसा महान् वैयाकरण उन्हें अपने शास्त्र में 'पूजार्थ' स्मरण करता है तो यह मानने का पर्याप्त कारण है कि उसके समय में इन सबकी रचनाएं लब्धप्रतिष्ठ थीं। साथ ही जिन-जिन सन्दर्भों में इनका उल्लेख हुआ है यदि उन्हें गहराई से देखें तो यह निष्कर्ष पाने में कठिनाई न होगी कि पाणिनि के व्याकरण में अपनाई गई संरचना-विश्लेषण की सभी तकनीकें जैसे प्रकृति-प्रत्यय का विभाग, लोप, आगम, विकार, अनुबन्ध-प्रयोग, नाम-धातु-विकास आदि सभी प्रवृत्तियां उक्त आचार्यों द्वारा

---

1. युधिष्ठिर मीमांसक, 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास', पृ० 110

अपनाई गई थीं। समासान्त 'टच्' के सन्दर्भ में 'सेनक' का स्मरण, 'सुब्' धातु तथा उपसर्ग की सन्धि में 'आपिशलि' का स्मरण, 'लङ्' सम्बन्धी 'झि' को 'जुस्' आदेश करने में शाकटायन मत का विशेष उल्लेख, 'ङकार' अनुबन्ध सहित 'अवङ्' आदेश के प्रसंग में 'स्फोटायन' का स्मरण सूत्रों में किसी प्रकार की पाद-पूर्ति के लिए नहीं माना जा सकता। यह वस्तुतः पाणिनि से पूर्व की विकसमान शब्द-विद्या का संकेत देता है। उसकी चरम परिणति पाणिनीय अष्टाध्यायी के रूप में उपलब्ध है। पाणिनि की सर्वातिशायिनी प्रतिभा ने परम्परा से प्राप्त भाषावैज्ञानिक सामग्री का आदर्श-शैली से उपयोग किया। उसके शब्दानुशासन के प्रकाश में आ जाने पर सभी पूर्ववर्तियों का नाम शेष हो जाना ही उसकी वैज्ञानिक प्रतिभा का प्रमाण है।

## 1.15. पाणिनि के पश्चाद्भावी वैयाकरण

पाणिनि के उत्तर काल में व्याकरण की प्रगति का विवरण पाने के लिए उसे दो दिशाओं में देखना उचित होगा—(1) पाणिनीय प्रस्थान (Paninian School) (2) पाणिनीयेतर प्रस्थान (Non-Paninian School)

## 1.16. पाणिनीय प्रस्थान के मुख्य वैयाकरण

पाणिनि की अष्टाध्यायी भारत के शाब्दिक जगत् में एक युगप्रवर्तक कृति के रूप में अवतीर्ण हुई। यह कहना असंगत न होगा कि इस आश्चर्यकारी कृति ने पाश्चात्य शाब्दिकों के हाथों में पहुच कर भाषाविज्ञान के क्षेत्र में पुनः एक नवीन युग का सूत्रपात किया है।[1] अस्तु, यहां हमारा उद्देश्य भारत के उन मुख्य शाब्दिकों का संक्षिप्त परिचय पाना है जिन्होंने पाणिनीय शब्दानुशासन के अध्ययन को प्रगति की दिशा दी। अध्ययन की सुविधा के लिए उन्हें पांच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :

(1) वार्तिककार (2) भाष्यकार (3) वृत्तिकार (4) व्याकरण-दर्शनग्रन्थ-कार (5) प्रक्रियाग्रन्थकार।

### (1) पाणिनि के वार्तिककार : कात्यायन ( 400 ई० पू० )

महाभाष्य के अनुशीलन से अष्टाध्यायी के अनेक वार्तिककारों का नाम-

1. Bloomfield, Language, p. 11 : "The Indian Grammar presented to European eyes, for the first time, a complete and accurate description of a language, based not upon theory but upon observation. Moreover, the discovery of Sanskrit disclosed the possibility of a comparative study of languages."

परिचय मिलता है। परन्तु कात्यायन ही एकमात्र वह महान् व्यक्तित्व है जिसके लिए 'वार्तिककार' नाम रूढ़-सा हो गया है। महाभाष्य से कात्यायन के दाक्षिणात्य होने का संकेत मिलता है। परम्परा से इन्हें पाणिनि का समसामयिक तथा उनका प्रतिद्वन्द्वी माना जाता है। मैक्समूलर के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों के मत से कात्यायन न तो पाणिनि का समकालीन है[1] और न दाक्षिणात्य ही। वे इसे पाणिनि से कम से कम एक शती पश्चात् रखना चाहते हैं तथा प्राच्य मानते हैं। कात्यायन को पाणिनि का प्रतिद्वन्द्वी अथवा ईर्ष्यालु मानना उसके प्रति अन्याय होगा। यथार्थ तो यह है कि उसके वार्तिकों ने पाणिनीय सूत्र-शास्त्र में 'उक्त-अनुक्त तथा दुरुक्त पक्षों' की मीमांसा[2] करके उसके वैज्ञानिक महत्त्व को लोकविदित कर दिया। साथ ही, अपने उपसंख्यान-वार्तिकों द्वारा उसे युगीन सन्दर्भ से जोड़ दिया।

### (2) भाष्यकार : पतञ्जलि (150 ई० पू०)

150 ई० पूर्व भारत ने पतञ्जलि नाम का एक महान् आचार्य पैदा किया। भारत की परम्परा उसे योग-दर्शन, चरक (वैद्यक-शास्त्र) तथा शब्दविद्या का महान् आचार्य मानती है। पाणिनीय अष्टाध्यायी के अध्ययन की दिशा में पतञ्जलि का योगदान कात्यायन-वार्तिकों के औचित्य का मूल्यांकन करना तथा पाणिनीय-सूत्रों की बहुमुखी व्याख्याओं द्वारा उनकी अर्थ-व्याप्ति का विस्तार कर देना रहा है।[3] उसका भाष्य जिसे सामान्यतः 'महाभाष्य' के नाम से जाना जाता है, पाणिनीय व्याकरण के विवादग्रस्त सन्दर्भों में अन्तिम निर्णायक समझा जाता है। महाभाष्य पर भर्तृहरि (7वीं शती) की महाभाष्यदीपिका, कैयट (11वीं शती) की 'प्रदीप' तथा नागेश (17वीं शती) की 'उद्योत' महत्त्वपूर्ण टीकाएं हैं।

### (3) पाणिनि के वृत्तिकार

**(i) जयादित्य और वामन (7वीं शती)**—अष्टाध्यायी सूत्र-क्रम से पाणिनीय सूत्रों की यथोद्देश स्थिति को ज्यों का त्यों बनाए हुए उनकी अर्थ-विवृति तथा लक्ष्य में प्रयोग दिखाना काशिका का महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। इस कृति

---

1. मैक्समूलर पाणिनि तथा कात्यायन को समकालीन मानता है। देखिए—गोल्डस्टूकर, पाणिनि, पृ० 93
2. गिरिधर शर्मा चतुर्वेद, नवाह्निक महा० भूमिका, 'उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते। तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः'।
3. वही, 'सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः। स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः'।

के आदिम चार अध्याय जयादित्य तथा अन्तिम चार वामन के नाम से जोड़े जाते हैं।[1] काशिका पर लिखी गई टीकाओं में जिनेन्द्रबुद्धि (8वीं शती पूर्वार्द्ध) की **काशिकाविवरणपंजिका** (न्यास) तथा हरदत्त (12वीं शती) की **पदमञ्जरी** अत्यन्त प्रामाणिक हैं।

(ii) **पुरुषोत्तमदेव** (1150 ई०)—वंगदेशीय बौद्ध लेखक पुरुषोत्तमदेव ने अष्टाध्यायी के वैदिक स्वर-प्रक्रिया के सूत्रों को छोड़कर लौकिक संस्कृत से सम्बन्ध रखने वाले सूत्रों पर 'भाषा-वृत्ति' नाम की टीका लिखी है।

(4) **पाणिनीय व्याकरण-दर्शन के ग्रन्थकार**

(i) **व्याडि** (450 ई०)—व्याकरण-दर्शन नाम चौंकाने वाला लग सकता है। परन्तु हमें यह वास्तविकता नहीं भुलानी है कि हमारे समस्त व्यावहारिक जीवन की जो भी अनुभूतियां या प्रतीतियां हैं वे उल्लिखित और अनुल्लिखित दोनों ही स्थितियों में शब्दतत्त्व से गुंथी रहती हैं। उन्हें हम शब्द के माध्यम से ही व्यक्त करते हैं[2]। मानव-मस्तिष्क की विचार-प्रक्रिया तथा उसकी अभिव्यक्ति के साथ शब्दतत्त्व (भाषा) का इतना अधिक निकट का सम्बन्ध है कि दार्शनिक और तार्किक भूमि पर उसकी व्याख्या के विना भाषा का कोई भी व्याकरण स्वयं को वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। अतः 'शब्द' का वस्तु-रूप क्या है ? शब्दबोध्य 'अर्थ' क्या है। दोनों में क्या सम्बन्ध है ? वे दोनों नित्य हैं या कार्य ? पदार्थ जाति है या व्यक्ति ? शब्द-अर्थ तथा उनके सम्बन्ध के बारे में व्याकरण क्या दृष्टि रखता है ? आदि-आदि ऐसे प्रश्न हैं जो शाब्दिक जगत् के सम्मुख प्रतिपद उपस्थित किए जा सकते हैं। इन प्रश्नों के तर्कसंगत समाधान खोज निकालना ही व्याकरण-दर्शन कहा जाता है। इस दिशा में सर्वप्रथम महत्त्व-पूर्ण कार्य, जिसका परिचय हमें कात्यायन-वार्तिक तथा महाभाष्य से मिलता है, व्याडि का 'संग्रह' नाम का ग्रन्थ था जो आज अनुपलब्ध है। 'दाक्षायण' व्याडि जैसा कि उसका नाम उसे दक्ष का युवापत्य सूचित करता है, पाणिनि का मातृ-वंशी तथा उससे दो-एक पीढ़ी पश्चात् होना चाहिए।[3]

(ii) **भर्तृहरि** (7वीं शती)—वार्तिक, भाष्य तथा व्याडि के संग्रह में विकीर्ण व्याकरण-आगम के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाला महान् वैयाकरण दार्शनिक भर्तृहरि हुआ है। पाणिनीय जगत् उसकी दो मूल्यवान् कृतियों—**महाभाष्यदीपिका** तथा **वाक्यपदीयम्** के लिए उसका ऋणी रहेगा।

---

1. श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती, काशिका विवरणपञ्जिका, प्रस्तावना, पृ० 16
2. "न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
   अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥" वाक्य० का० 1 कारिका० 124
3. रामगोविन्द शुक्ल, वाक्यपदीयभूमिका, पृ० 1

(iii) **कौण्डभट्ट** (17वीं शती)—भट्टोजिदीक्षित द्वारा प्रणीत 'कारिकावलि' जिसमें व्याकरण आगम की दृष्टि से पद, प्रकृति-प्रत्यय तथा वाक्य के द्वारा उपस्थाप्य अर्थ-बोध की मीमांसा की गई है, इस दिशा की मूल्यवान् कृति है। कौण्डभट्ट ने उस पर 'वैयाकरण भूषण सार' व्याख्या की है।

(iv) **नागेश** (17वीं शती का उत्तरार्द्ध)—नागेश भट्ट को पतञ्जलि के पश्चात् यदि सर्वमूर्धन्य वैयाकरण कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। व्याकरण-दर्शन की दिशा में जैसा स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त चिन्तन नागेश की वैयाकरण सिद्धान्त-लघुमंजूषा में मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ है।[1] पाणिनीय जगत् को नागेश ने अनेक मूल्यवान् रचनाएं दी हैं—जिनमें महाभाष्य की उद्योत टीका, सिद्धान्त कौमुदी की लघुशब्देन्दुशेखर टीका, परिभाषेन्दुशेखर, वैयाकरणसिद्धान्त लघुमंजूषा उल्लेखनीय हैं।

(5) **प्रक्रियाग्रंथकार**

(i) **धर्मकीर्ति** (1090 ई०)—अष्टाध्यायी सूत्रों को शब्दरचना-प्रक्रिया की दृष्टि से प्रकरण-बद्ध करके नए युग का सूत्रपात्र करने वाला आचार्य धर्मकीर्ति था। इसका 'रूपावतार' ग्रन्थ प्रक्रिया-ग्रन्थों में सर्वप्रथम है।[2]

(ii) **रामचन्द्र** (1400 ई०)—इसका ग्रन्थ प्रक्रिया-कौमुदी के नाम से प्रसिद्ध है।

(iii) **भट्टोजिदीक्षित** (1600 ई०)—प्रक्रिया-ग्रन्थों में भट्टोजिदीक्षित की 'सिद्धान्त कौमुदी' को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हुई। यही नहीं, वैयाकरण-निकाय में काशिका तथा महाभाष्य आदि के अध्ययन को इसने पीछे धकेल दिया। इस पर नाना टीकाएं और उपटीकाएं लिखी गई हैं। इसका ही लघुरूप वरदराजाचार्य (18वीं शती) की लघुसिद्धांत कौमुदी है।

## 1.17 पाणिनीयेतर व्याकरण-प्रस्थान

अष्टाध्यायी के पश्चात् भी भारत में संस्कृत-व्याकरण के सूत्र-शास्त्रों की रचना समय-समय पर होती रही है। पणिनीयेतर व्याकरण-प्रस्थान निम्नलिखित हैं :

(1) **चान्द्रव्याकरण**—इस व्याकरण का प्रवर्तक चन्द्रगोमिन् है। कथासरित्-सागर के अनुसार इसका समय 100 ई० पू० होना चाहिए। चन्द्रगोमी बौद्ध था।

(2) **कातन्त्र व्याकरण**—शर्ववर्मा (द्वितीय शती ई० पू०) प्रणीत यह व्याकरण कालाप तथा **कौमार** व्याकरण के नाम से भी जाना जाता है।

1. गोपीनाथ कविराज, मंजूषा—प्राक्कथन, पृ० 1
2. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 378

(3) **शाकटायन व्याकरण**—इस व्याकरण का निर्माता शाकटायन जैन (8वीं शती) था।

(4) **हैमशब्दानुशासन**—जैन आचार्य हेमचन्द्र सूरि (12वीं शती) ने इस व्याकरण-शास्त्र की रचना की है। इसमें आठ अध्याय और बत्तीस पाद हैं। इसका महत्त्वपूर्ण कार्य अन्तिम अध्याय में प्राकृत और अपभ्रंश जनभाषाओं का वर्णन करना है।[1]

(5) **जैनेन्द्रव्याकरण**—जैनधर्म के आचार्य देवनन्दी (5वीं शती) ने इस व्याकरण का प्रवर्तन किया था।

(6) **सारस्वत व्याकरण**—अनुभूतिस्वरूपाचार्य (13वीं शती) द्वारा प्रणीत यह व्याकरण केवल सात सौ सूत्रों में निबद्ध है। यह अति सरल और संक्षिप्त व्याकरण है।

(7) **मुग्धबोध-व्याकरण**—बोपदेव (13वीं शती) द्वारा यह व्याकरण विरचित हुआ किन्तु इसका प्रभाव बंगाल से बाहर न हो सका।

## 1.18. पाणिनीय भाषा

पाणिनि का व्याकरण जिस भाषा का संरचनात्मक वर्णन करता है वह संस्कृत-भाषा के विकास के उस सन्धि-युग का प्रतिनिधित्व करती है जबकि वैदिक भाषा शनैः-शनैः वैदिक ग्रन्थों में सिमट रही थी तथा उसका स्थान विकसमान भाषा प्राप्त कर रही थी। छान्दस वाङ्मय से भिन्न शब्द-कुल जिसे पाणिनि 'भाषा' नाम से व्यवहृत करता है दैनिक सामाजिक जीवन की भाषा है। पाणिनि की कृति का उद्देश्य समसामयिक लौकिक भाषा का पूर्ण तथा वैज्ञानिक संरचनात्मक विश्लेषण करना तथा लोक-भाषा के साथ **वैदिक भाषा** का आनुवंशिक साजात्य बोधित करने के लिए वैदिक भाषा का प्रासंगिक वर्णन करना है।

## 1.19. आधुनिक युग में पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन

आधुनिक युग में पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन की मुख्यतः निम्नलिखित प्रवृत्तियों का उदय हुआ है :

(क) पाणिनीय व्याकरण का सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक अध्ययन।

(ख) वैदिक-व्याकरण (शिक्षा, प्रातिशाख्य) के साथ पाणिनीय-व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन।

(ग) अष्टाध्यायी में प्रयुक्त वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान की विधाओं का

1. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, पृ० 541

अध्ययन।

(घ) शब्द-रचना सम्बन्धी पाणिनीय प्रक्रिया का अध्ययन।

(ङ) भाषा-दर्शन के सम्बन्ध में पाणिनीय मान्यताओं का अध्ययन।

(च) पाणिनीय व्याकरण का तुलनात्मक भाषाविज्ञान की दृष्टि से अध्ययन।

(छ) वैदिक भाषा के व्याकरण में पाणिनि के योगदान का अध्ययन।

प्रथम प्रकार के अध्ययन में वासुदेवशरण अग्रवाल का 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' महत्त्वपूर्ण कृति है।

द्वितीय प्रकार के अध्ययन के अन्तर्गत सिद्धेश्वर वर्मा का 'क्रिटिकल स्टडीज़ इन दि फोनेटिक आब्ज़रवेशन्स आफ इण्डियन ग्रामेरियन्स' जैसी कृतियों को लिया जा सकता है।

तृतीय प्रकार का अध्ययन अमरीका के ब्लूमफील्ड स्कूल के प्रभाव से बहुत अधिक महत्त्व पा रहा है। इस दिशा में डा० विद्यानिवास मिश्र की 'दि डिस्क्रिप्टिव टैक्नीक ऑफ पाणिनि' एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन है।

चतुर्थ प्रकार के अध्ययन सम्बन्धी प्रयत्नों में बैटी शेफ्ट्स की 'ग्रेमेटिकल मैथड इन पाणिनि' तथा बुश्कूल के 'दि त्रिपादी' को लिया जा सकता है।

पंचम प्रकार के अध्ययन के अन्तर्गत डा० सत्यकाम वर्मा का 'भाषा-तत्त्व और वाक्य-पदीय' द्रष्टव्य हैं।

षष्ठ प्रकार के अध्ययन की दिशा में संभवतः पूर्ण अध्ययन के रूप में कोई कृति प्रकाश नहीं पा सकी है तथापि इस प्रवृत्ति के अध्ययन के लक्षण डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री की 'संस्कृत-शिक्षण की नवीन योजना' में यत्र-तत्र स्फुटित हुए हैं।[1]

सप्तम प्रकार के अध्ययन की दिशा में पाल थीमे का 'पाणिनि एण्ड वेद' प्रशस्य कृति है।

## 1.20. प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य

(क) पाणिनीय अष्टाध्यायी की अध्ययन परम्परा को नवीन समीक्षात्मक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना;

(ख) अष्टाध्यायी-अध्ययन को एक सुनियोजित विधा के रूप में प्रस्तुत करना तथा उस विधा के आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन करना;

(ग) प्राच्य-प्रतीच्य भाषा-शास्त्रियों की दृष्टि से वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान की कृति के रूप में अष्टाध्यायी की समीक्षा;

---

1. डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, संस्कृत-शिक्षण की नवीन योजना, विषय-प्रवेश, पृ० 1 से 9

(घ) पाणिनीय विश्लेषण-पद्धति के बारे में उत्पन्न सन्देहों का निराकरण;

(ङ) अष्टाध्यायी की रचना-विधा को यथाशक्ति मौलिक रूप में प्रस्तुत कर उसके अध्ययन को अधिकाधिक प्रगति देना।

डा० एस० डी० जोशी के शब्दों में, "विद्या के अध्ययन का अर्थ उन मौलिक सिद्धान्तों का अध्ययन है जो उन व्याकरणिक अवधारणाओं में अन्तर्निहित होते हैं जोकि भाषा-संरचना के ज्ञान के लिए अपरिहार्य हैं।"[1] प्रस्तुत कृति इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

1. S. D. Joshi, "Two Methods of Interpreting Panini", Journal of the University of Poona, Humanities section, No. 23, p. 53-61.